# जगत् का संचालक कौन?

**प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,**
**पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान**

जगत् का संचालक कौन है? जगत् ईश्वर संचालित करता है या अपने आप चलता है या मनुष्य का कर्म इसे संचालित करता है। आदि अनेक प्रश्न हैं। कुछ लोंगों के अनुसार ब्रह्म, विष्णु, महेश संसार को उत्पन्न करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार करते हैं। कुछ लोगों के अनुसार ईश्वर जगत् का संचालन करता है। उसकी इच्छा के बिना एक पता भी नहीं हिलता। कुछ लोगों के अनुसार जगत् स्वयं संचालित होता है। जगत् को संचालित करने के लिए छः द्रव्यों की आवश्यकता होती है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये छः द्रव्य जगत् का संचालन करते हैं। इन्हें जड़ और चेतन दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। जीव चेतन है शेष सभी जड़ हैं।

जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि को चलाने के लिये किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं होती। सृष्टि कर्म के नियम के अनुसार अपने आप चलती है। जो जैसा कर्म करता है, उसको उसका फल अपने आप मिल जाता है। जो शराब पीयेगा, शराब का नशा उसे अपने आप होगा। कर्म अपना फल स्वयं देते हैं। कर्मफल के लिये किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं होती। जगत की विविधता का आधार कर्म नियम है और इसका निर्णायक स्वयं कर्म ही होता है। जैन दर्शन के अनुसार कर्म सिद्धान्त में कृतप्रणाश एवं अकृताभ्युगम अर्थात् किए हुए कर्म का फल नष्ट नही होता तथा बिना किए कर्म का फल प्राप्त नही होता की बात स्वीकार करता है। यहां पर कर्म का कारणता संबंधित नियम स्वीकार किया गया है। जिसके अनुसार प्रत्येक कर्म का कोई न कोई कारण अवश्य विद्यमान है। शुभ कर्म, शुभ परिणाम, अशुभ कर्म अशुभ परिणाम देते हैं, यह भी कर्मवाद की निश्चितता है। जैन दर्शन कर्मवादी होने के कारण मानव के विकास और पतन की सारी आकस्मिकता अपने कर्म सिद्धान्त पर मानता है। मनुष्य और कर्म में सीधा संबंध होने के कारण इस दर्शन में कर्म को पौद्गलिक एवं प्रत्यक्ष फल दायक माना गया है।

कर्म सिद्धात की व्यवस्था को देखते हुये मूल प्रश्न यह खड़ा होता है कि संसार के उन कर्मो का कर्ता और भोक्ता कौन है? जो कर्म संसार को बनाते हैं। इसका सीधा उत्तर यह है कि यदि कर्म को ही प्रधान मान लिया जाय तो नियतिवाद का समर्थन करना पड़ेगा। यदि कर्ता को मुख्य माना जाय तो आत्मकर्तृत्ववाद का समर्थन करना पड़ेगा। जैसा कि पहले ही स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन की कर्म मीमांसा प्रायः आत्मकर्तृत्ववाद या संकल्प स्वातंत्र्य का समर्थन करती है। अतः कर्म का कर्ता एवं भोक्ता दोनों ही आत्मा है। आत्मा ही कर्मो का सृजन करती है आत्मा ही उसको भुगतती भी है।

जैन दर्शन में भी आत्मा को ही कर्म का कर्ता और भोक्ता स्वीकार किया गया है। किन्तु वही आत्मा कर्ता और भोक्ता बनती है जो कर्म से प्रभावित होती है, अर्थात् कर्म के प्रभाव से ही जीव संसारी होता है और संसारी जीव ही कर्त्ता बनता है और कर्ता बनने के पश्चात् उसी जीव को ही भोक्ता बनना है और भोक्ता बनने के लिये ही उसे संसार में फिर आना पड़ता है। इस प्रकार कर्त्ता और कर्म का एक निर्धारित संबंध तब तक बना रहता है जब तक कर्त्ता पूर्णतः अपने कर्मो को भोग नहीं लेता। इसलिये कर्ता भोक्ता और कर्म में एक निरन्तर श्रृंखला बनी हुयी है।

जैन दर्शन की कर्म व्यवस्था के आधार पर जन्म से प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। इसलिये जैन दर्शन में किसी भी ऐसे ईश्वर या पारलौकिक सत्ता का समर्थन नही किया गया है जो मानव के जन्म एवं कर्म परिणाम के लिये भूमिका निभाता है। प्रायः भारतीय दर्शन में ईश्वर की सत्ता कर्म परिणाम एवं पुनर्जन्म के संन्दर्भ में स्वीकार की गयी है। जगत का निर्माण, मनुष्य का निर्माण, फलदान आदि जो कुछ ईश्वर की उपस्थिति की शर्ते हैं, जैन दर्शन उसे स्वीकार नहीं करता। संसार एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। इसका कोई निर्माता और विनाशक नहीं है। पुनर्जन्म, कर्म के प्रभाव से घटित होता है। आनुपूर्वी नामक कर्म पुनर्जन्म के लिये समर्थ है और प्रत्येक कर्म निर्धारित समय पर अपना परिणाम अवश्यंभावी रूप से देता है। अतः मनुष्य के कर्म के परिणाम के लिये ईश्वर नही वरन् मानव स्वयं उत्तरदायी है। इस आधार पर जैन दर्शन सृष्टि का संचालक ईश्वर को न मानकर मानव की सत्ता और स्वातंत्र्य का समर्थन करता है।

वैदिक दर्शन के अनुसार ईश्वर को जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कारण कहा गया है। वे समस्त देवों तथा लोकों के उत्पत्ति स्थान हैं। स्थूल, सूक्ष्म, अव्यक्त, दो पैरों वाले और चार पैरों वाले सम्पूर्ण जीव समुदाय उन्हीं की कृपा पर आश्रित हैं। वे ही परमेश्वर स्थितिकाल में समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करते हैं तथा वे ही सम्पूर्ण जगत् के अधिपति और समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से छिपे हुए हैं। आत्मा को अमर, नित्य तथा अपरिणामी कहा गया है। आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। यह अजन्मा नित्य–शाश्वत और पुरातन है तथा शरीर के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता। जैन दर्शन के अनुसार पुरुषार्थ के द्वारा आत्मा परमात्मा बन सकता है। इस प्रकार एक ही प्रश्न का उत्तर जैन दर्शन और वैदिक दर्शन दोनों भिन्न–भिन्न रूप में देते हैं।